दो कमरे का मन

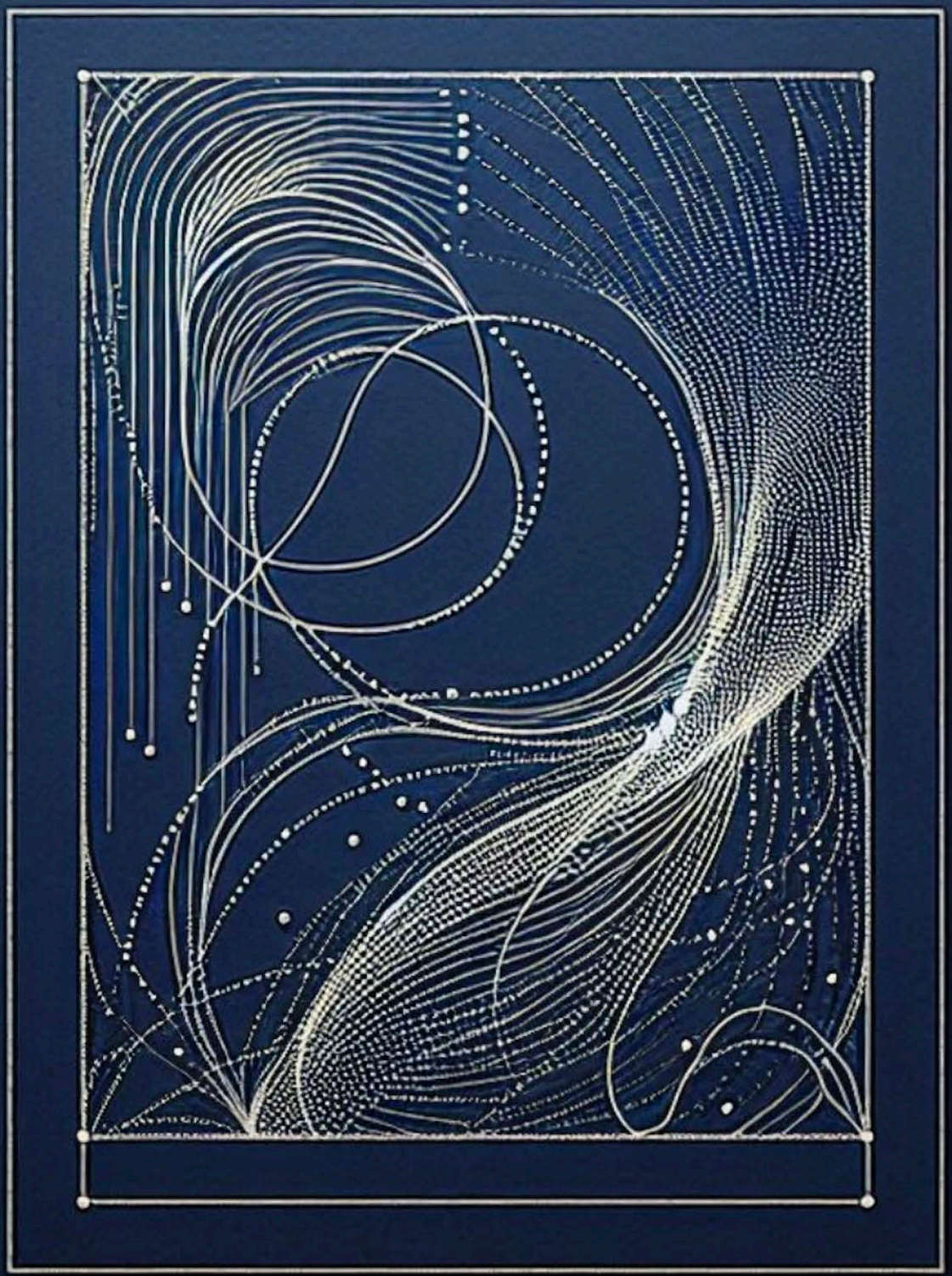

कलानाथ मिश्र

दो कमरे का मन

कलानाथ मिश्र

प्रकाशक: नॉटनल

प्रकाशन: जून, 2025

© कलानाथ मिश्र

चिन्ता का विषय तो होना ही चाहिए कि इधर भौतिकता के मलबे पर आ बैठी हैं मनुष्य विरोधी विडम्बनाएँ। क्षत-विक्षत सुदृढ़ भारतीय कौटुम्बीय जीवन, क्षुब्ध, अवाक्, गहरे यह महसूस कर रहा है कि भूमंडलीकरण और उदारीकरण के दौर में जहाँ पूरा विश्व अपनी सरहदों से मुक्त हो विश्वग्राम के व्यापकत्व का हिस्सा हो रहा है- वहीं बाजारवाद और उपभोक्तावाद के शिकंजे में कसता हुआ आत्मकेन्द्रित, संवेदना क्षरित मनुष्य, छुद्र और बौना !

कलानाथ मिश्र का सजग रचनाकार अपनी समाज सापेक्ष दृष्टि से उन आहटों को निरन्तर टोह और सुन रहा है जिसे सुना जाना और गुना जाना समय रहते बहुत जरूरी है। उसी जरूरत की अनिवार्यता से जनमती हैं- 'दो कमरे का मन' जैसी अद्भुत कथा - रचना। मनुष्य और प्रकृति की परस्परता की सदियों पुरानी अदम्य ललक से अभिव्यक्ति पाती है उनकी मर्मस्पशी मनोवैज्ञानिक कहानी ‘आम का पेड़’।

बाजारवाद के अंधे अँधेरों की उपभोक्तावादी मानसिकता की काली परछाइयाँ ‘मोक्ष’, ‘डालर पुत्र', 'तेजाब', 'पार्क' जैसी उनकी अन्य बाँधे रखने वाली गझिन कथा -रचनाओं के मर्म में सघनता से प्रतिबिंबित हुई हैं। जीवन मूल्यों की वापसी के लिए संघर्षरत उनकी यह सार्थक कथायात्रा निश्चय ही ताजे हवा के झोंके -सी आश्वस्तकारी है। हिन्दी कथा - संसार को इस ऊर्जावान कथाकार से बहुत उम्मीदें हैं।

-चित्रा मुद्गल

पूज्य पितृव्य श्री भवनाथ मिश्र

को

सादर समर्पित

तथा

स्मृतिशेष आदरणीयाँ चाची जाह्नवी देवी

भाई स्व. धरानाथ मिश्र

एवं

अनुज स्व. सिन्धु की

पुण्य स्मृति में...

अपनी बात

उपन्यासालोचन और समालोचना पढ़ते-लिखते कब कहानियाँ लिखने लग गया, पता ही नहीं चला। परिवेशगत संवेदनशीलता ने ही अभिव्यक्ति की यह सशक्त शैली अपना ली होगी। रोजमर्रे की जिंदगी में हमारा सामना अनेक ऐसी घटनाओं, दृश्यों, पात्रों तथा उनके विभिन्न मनोभावों से होता है जो अनायास ही दिल को छू जाते हैं, उसमें गहरे उतर जाते हैं और चुपके से आपके अवचेतन में घर कर जाते हैं।

अवचेतन में पूर्व से उपस्थित ऐसे अनेक भावों, मनोविकारों, दृश्यों, चरित्रों के सान्निध्य में वे यथार्थ आकार ग्रहण करने लगते हैं और उनकी अभिव्यक्ति की उत्कंठा मन को लिखने के लिए विवश करने लगती है। तब रचनाकार की लेखनी कुशल चित्रकार की तूलिका की तरह शब्दों से आकार बनाती है, फिर उसमें भावों के रंग भरती है। इस प्रकार एक चित्र उभरकर सामने आता है।

प्रस्तुत कहानियाँ ऐसे ही कुछ चित्र हैं, जो हैं तो बिलकुल यथार्थ किन्तु रचनाकार-सुलभ सृजनात्मक कल्पनाशीलता से रूप-रंग और आकार ग्रहण कर उनका नवसृजन हो गया है।

हमारे दैनदिन जीवन में घटने अथवा दिखने वाले ये ऐसे वास्तविक चित्र हैं, सम्भव है जिनसे आपका साक्षात्कार पूर्व में भी हो चुका हो अथवा जो नितांत आपको अपने ऊपर घटित लगता हो और जिनके कारण आपने पहले भी हर्ष, विषाद, क्लेश, ग्लानि, पश्चात्ताप

का अनुभव किया हो। यदि वास्तव में ये कहानियाँ ऐसी भावनाओं, चित्रों अथवा चरित्रों से पाठकों का परिचय करा सकीं तो मैं अपने श्रम को सार्थक समझूँगा।

मेरे पिता और मेरे अग्रज दोनों अध्ययन व्यसनी हैं। वे स्वाभाविक रूप से मेरी कहानियों के प्रथम पाठक रहे हैं। उनके विचार और सुझाव मेरा मनोबल बढ़ाते रहे हैं। मैं उनके प्रति अपना आदर अर्पित करता हूँ।

अपने समस्त परिवार, पत्नी, भाभी अनुज द्वय और बच्चे- जिनके सहयोग के बिना यह लेखन संभव नहीं था, उनके प्रति मैं आभारी हूँ।

कलानाथ मिश्र

अनुक्रम

दो कमरे का मन	7
मोक्ष	28
तेजाब	49
आम का पेड़	59
डॉलरपुत्र	73
निर्मम	110
ज्वार-भाटा	124
पार्क	142
शिकायत	156
अतिथि	168
सृष्टिचक्र	180

दो कमरे का मन

सुलेखा टीवी ऑन कर रखी थी, पर ध्यान उसका कहीं और था। टीवी जैसे कमरे के पार्श्व के लिए ही चलाया गया हो। वह गुनगुनाते हुए कभी घड़ी की ओर देख रही थी तो कभी ड्रेसिंग टेबल के पास स्वयं को क्षणभर निहार लेती थी। उसके चेहरे पर चपलता और आत्मविश्वास के मिश्रित भाव थे। उसे अब विश्वास था कि सुदीप के स्वभाव में सुधार हो रहा है। वह अब पहले की तरह नहीं बहकता है । अब सुदीप को अपनी और अपने परिवार की जिम्मेदारियों का अहसास हो गया है ।

परिवार से सुलेखा का तात्पर्य आधुनिक आदर्श परिवार से है, यानी कि पति, पत्नी और बच्चे । बस !

सुलेखा ने उसाँसें लीं, 'उफ... कितना समझाना पड़ा है उसे ।' सोचते हुए सुलेखा सुदीप को फोन लगाकर याद दिलाने के लहजे में बोली, 'प्रोग्राम याद है न सुदीप ! आज जरा पहले ही आ जाना। बहुत अच्छा सेल लगा है।'

सुदीप ने एक बार फिर टालते हुए कहा, 'अभी पिछले ही दिन तो मार्केटिंग करके आयी हो। फिर सेल हो या कुछ, बिना जरूरत खरीदारी का क्या मतलब है?'

सुलेखा, 'तुम भी सुदीप ...! मार्केटिंग के नाम पर ऐसे भड़कते हो जैसे साँड़ को लाल कपड़ा दिखा दिया हो। जरूरत तुम क्या समझो। रोज कुछ न कुछ काम पड़ता ही रहता है', फिर मजाक के लहजे में बोली, 'अरे! अब तुम मेट्रोपोलिटन कल्चर में हो। अब ये गँवईपन

छोड़ो। जरा देखो अपने कलिग सक्सेना को, कैसे रहते हैं। तुमसे तो कम ही मिलता है उन्हें। जरा उनकी बीवियों को देखो तो पता चलेगा। रोज-रोज क्लब, किट्टी पार्टी..., उनके सामने तो मैं ठहर ही नहीं सकती। पर तुम्हें क्या! तुम्हें तो यह सब पसन्द ही नहीं है। न मार्केटिंग, न...। पसन्द भी कैसे हो मन में तो पैसे बचाने की धुन रहती है। आखिर समाजसेवा जो करनी है।'

सुदीप ऑफिस में था, सुलेखा के सभी डायलॉग उसे अब कंठस्थ हो गए थे। वह बात बढ़ाना नहीं चाहता था, बोला, 'ओके डार्लिंग, जैसा तुम कहो, आ जाऊँगा, तैयार रहना।'

सुलेखा ने संतुष्ट होकर फोन रख दिया।

अत्यन्त सलीके से सुलेखा धीरे-धीरे, सुदीप को अपने ढाँचे में ढाल पायी है। यही कारण है कि सुलेखा के चेहरे पर संतुष्टि का भाव स्पष्ट दिखता है।

बड़े शहरों में डिस्काउन्ट का मौसम चलता ही रहता है। अनेक स्तरीय दुकानों में भी पचास प्रतिशत डिस्काउन्ट का बड़ा बड़ा आकर्षक बैनर, पोस्टर लगा रहता है। इस बार तो कहीं-कहीं सत्तर प्रतिशत तक डिस्काउन्ट का इश्तहार है। सुलेखा का तर्क रहता है कि अपने लिए लेना हो तो डिस्काउन्ट न भी देखे लेकिन पार्टी-सार्टी, लेन-देन में बिना डिस्काउन्ट चल ही नहीं पाता। कम दाम का टैग हटाना पड़ता है, पर पूरा दाम का टैग रहे उस पर से डिस्काउन्ट मिले तो सोसाइटी में इज्जत बनी रहती है।

सुलेखा महानगर में ही पली-बढ़ी है, वह इस इज्जत के महत्व को भलीभाँति समझती है। इसीलिए सुलेखा इन डिस्काउन्ट की खबरों पर नजर रखती है। वह सुदीप को भी जब-तब